

# श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 3 अध्याय 30: शरीर, घर आदि में आसक्त मनुष्यों का पतन

13 September 2026

🙏 पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



आकाश में बहता एक बादल यह जानने का कोई साधन नहीं रखता कि वायु का उस पर कितना बल है — और कपिल अपनी माता से कहते हैं कि देहधारी जीव भी ऐसा ही है, जो जन्म-दर-जन्म बिना रुके एक ऐसी शक्ति द्वारा बहाया जाता है जिसकी विराटता को वह कभी लक्षित ही नहीं करता।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। हम कपिल-गीता के हृदय में आगे बढ़ रहे हैं — वह शिक्षा जो भगवान् कपिल सरस्वती नदी के तट पर स्थित वन-आश्रम में अपनी माता देवहूति को दे रहे हैं। पिछला अध्याय काल-पुरुष की सर्वव्यापी शक्ति की एक भव्य स्तुति के साथ समाप्त हुआ था — भगवान् का वह स्वरूप जिनके भय से वायु बहती है, सूर्य चमकता है, नदियाँ बहती हैं, और सृष्टि के देवता स्वयं विस्मित खड़े रहते हैं। अध्याय 30 उसी काल-पुरुष को उस स्थान की ओर मोड़ता है जिसकी ओर हम में से अधिकांश कभी दृष्टि नहीं डालते: एक साधारण, अविशिष्ट जीवन जो गृहस्थी सम्भालने में लीन है। इस अध्याय में कोई दार्शनिक वाद-विवाद नहीं है, कोई चमकदार ब्रह्माण्डीय दर्शन नहीं है — केवल एक धैर्यपूर्ण, लगभग वैज्ञानिक विवरण कि जो जीव शरीर, पति/पत्नी, सन्तान, घर तथा धन को ही सम्पूर्ण यथार्थ मान बैठता है, वह किस प्रकार क्रमशः वृद्धावस्था के अपमान से, फिर मृत्यु के क्षण से, फिर यमराज के पास जाने वाले भयावह मार्ग से, और अन्ततः नरक की यातनाओं से होकर ले जाया जाता है — जब तक कि, शुद्ध होकर, वह पुनः मनुष्य के रूप में जन्म लेकर एक बार फिर प्रयास न करे। इस पूरे अध्याय में कपिल की स्वयं की माता ही उनकी श्रोता हैं, और यह स्मरण रखना आवश्यक है, अध्याय के सबसे कठोर अंशों में भी, कि यह शिक्षा एक पुत्र द्वारा अपनी माता को प्रेमवश दी जा रही है, भयभीत करने के लिए नहीं अपितु सचेत करने के लिए।

## अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 3 (तृतीय स्कन्ध)
- अध्याय: 30 (त्रिंश अध्याय)
- अध्याय-शीर्षक: शरीर, घर आदि में आसक्त मनुष्यों का पतन
- मुख्य वक्ता: भगवान् कपिल, अपनी माता देवहूति को शिक्षा देना जारी रखते हुए (इस अध्याय में देवहूति की कोई प्रत्यक्ष वाणी में बाधा नहीं है, यद्यपि कपिल श्लोक 29 में उन्हें सीधे “हे माता” कहकर सम्बोधित करते हैं)
- मुख्य श्रोता: देवहूति
- मुख्य स्थान: सरस्वती नदी के तट पर ऋषि कर्दम का आश्रम (कपिल-गीता के पूर्ववर्ती अध्यायों के समान ही स्थान)
- मुख्य विषय-वस्तु: काल की शक्ति के प्रति जीव की अज्ञानता; शरीर, पत्नी, सन्तान, घर, पशु तथा धन के प्रति गृहस्थ की गहराती आसक्ति; वृद्धावस्था, रोग तथा उपेक्षा के दुःख; निकट आती मृत्यु के शारीरिक लक्षण; यमराज के धाम की ओर जीव की बलात् यात्रा; विभिन्न नरकों की यातनाएँ; तथा उन यातनाओं और निम्नतम पशु-योनियों से शुद्ध होकर अन्ततः मनुष्य के रूप में पुनर्जन्म
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 3, अध्याय 30, श्लोक 1-34
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

## वह बादल जो वायु को नहीं जानता

अध्याय 30 एक ऐसे बिम्ब से आरम्भ होता है जिसे आकाश को बदलते देखने वाला हर पाठक तुरन्त पहचान लेगा:

भगवान् कपिल ने आगे कहा: जिस प्रकार बादलों का समूह प्रचण्ड वायु-देवता की असीम शक्ति को नहीं जानता, यद्यपि वह उसी के द्वारा (इधर-उधर) धकेला जाता है, उसी प्रकार यह जीव निश्चय ही सर्वशक्तिमान् काल की विराट शक्ति को नहीं जानता, यद्यपि वह उसी के द्वारा बार-बार जन्म-मृत्यु के अधीन किया जाता है। (श्लोक 1)

एक बादल आकाश में धकेला जाता है, छिन्न-भिन्न किया जाता है, नया आकार दिया जाता है, विलीन किया जाता है — यह सब एक ऐसी शक्ति द्वारा जिसे वह देख भी नहीं सकता, प्रतिरोध करना तो दूर की बात है। कपिल कहते हैं कि जीव (व्यष्टि आत्मा, जो देहधारी होकर अपने वास्तविक स्वरूप को भूल चुकी है) ठीक ऐसा ही बादल है, और काल — स्वयं समय, जो यहाँ भगवान् की अपनी अजेय शक्ति का ही एक नाम है — ठीक ऐसी ही वायु है। हम काल को शक्ति के रूप में शायद ही कभी अनुभव करते हैं; हम उसे केवल अप्रत्यक्ष रूप से अनुभव करते हैं, उन योजनाओं के रूप में जो वह नष्ट कर देता है और उन हानियों के रूप में जो वह पहुँचाता है।

कपिल उवाच ।

तस्यैतस्य जनो नूनं नायं वेदोरुविक्रमम् ।

काल्यमानोऽपि बलिनो वायोरिव घनावलिः ॥ १ ॥

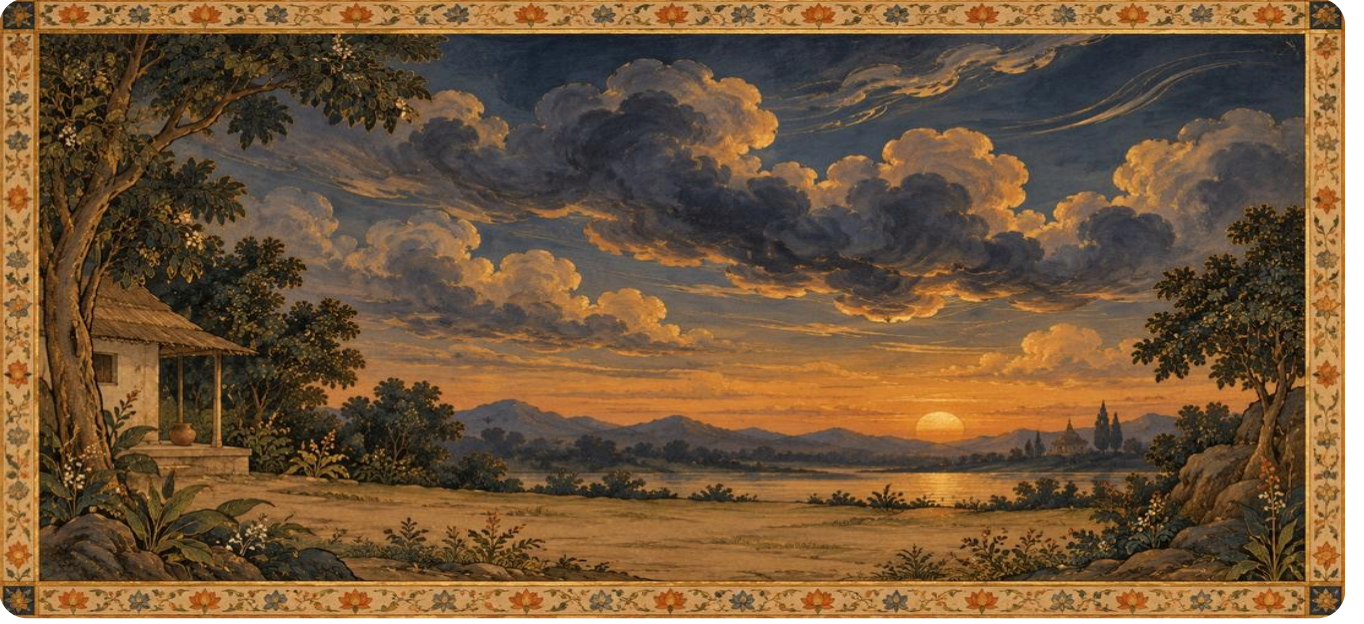
*kapila uvāca tasyaitasya jano nūnaṁ nāyaṁ vedoru-vikramam kālyamāno 'pi balino vāyor iva ghanāvaliḥ*

अर्थ: कपिल ने अपनी माता से कहा कि यह जीव, काल की भारी शक्ति द्वारा निरन्तर बहाया जाता हुआ भी, यह तनिक भी नहीं जानता कि उस पर कोई ऐसी शक्ति काम कर रही है — ठीक वैसे ही जैसे प्रचण्ड वायु से इधर-उधर धकेला जाता बादलों का समूह वायु के अपने बल को कभी नहीं समझ पाता। (स्कन्ध 3, अध्याय 30, श्लोक 1)

कपिल का अगला श्लोक इसे और स्पष्ट करता है:

सर्वशक्तिमान् काल-पुरुष जीव द्वारा सुख की प्राप्ति हेतु बड़े परिश्रम से अर्जित प्रत्येक वस्तु को नष्ट कर देते हैं, जिसकी हानि पर वह अत्यधिक शोक करता है। (श्लोक 2) यह इसलिए है क्योंकि वह मूर्ख प्राणी अपने क्षणभंगुर शरीर से सम्बद्ध घर, भूमि तथा धन आदि को — तथा उससे जुड़े लोगों को भी (जैसे अपनी पत्नी, पुत्र आदि, जो समान रूप से नाशवान् हैं) — शाश्वत मान बैठता है। (श्लोक 3)

इन दो श्लोकों में इस अध्याय का सम्पूर्ण तर्क संक्षिप्त रूप में समाहित है: शोक कोई आकस्मिक दुर्भाग्य नहीं है जो कभी-कभार किसी अन्यथा स्थिर जीवन में बाधा डालता हो — यह नाशवान् वस्तुओं (शरीर, घर, शरीरों पर आधारित सम्बन्ध) को शाश्वत मान लेने का निश्चित परिणाम है। शोक उत्पन्न करने के लिए काल को क्रूर होने की आवश्यकता नहीं है; उसे केवल वही करते रहना है जो वह सदा से करता आया है, अर्थात् वस्तुओं का अन्त करना। शोक करने वाले की अपनी ही भूल — जहाँ कोई स्थायित्व कभी वचनबद्ध नहीं था वहाँ स्थायित्व की अपेक्षा करना — शेष कार्य स्वयं पूरा कर देती है।



जिस प्रकार बादलों का समूह वायु की शक्ति को जाने बिना इधर-उधर धकेला जाता है, उसी प्रकार जीव काल की शक्ति द्वारा बार-बार जन्म-मृत्यु में ले जाया जाता है, अधिकांशतः इस बल से अनभिज्ञ रहते हुए (श्लोक 1)।

## गृहस्थ की गहराती आसक्ति

सिद्धान्त प्रस्तुत करने के बाद, कपिल अगले कई श्लोकों में असाधारण कथा-धैर्य के साथ यह वर्णन करते हैं कि एक साधारण जीवन में आसक्ति किस प्रकार गहराती जाती है। जीव, वे कहते हैं, “जिस भी योनि में जन्म लेता है, उसी में आनन्दित रहता है, तथा उसके प्रति कभी विरक्ति अनुभव नहीं करता” (श्लोक 4) — यहाँ तक कि, चौंकाने वाली बात यह है, “नरक में भी,” जहाँ “भगवान् की माया से मोहित होकर, जीव नरक के सुखों में आनन्द लेते हुए अपने शरीर को त्यागने में तनिक भी इच्छुक नहीं होता” (श्लोक 5)। यह अध्याय के सबसे शान्त किन्तु विचलित करने वाले प्रेक्षकों में से एक है: आसक्ति कोई तर्कसंगत निर्णय नहीं है कि कोई परिस्थिति अच्छी है; यह एक प्रकार का गुरुत्वाकर्षण-सा खिंचाव है जो परिस्थिति की परवाह किए बिना कार्य करता है, तथा जीव को उस शरीर तथा परिस्थिति से बाँधे रखता है जिसमें वह इस समय है, चाहे वह कितनी भी दयनीय क्यों न हो।

यहाँ से कपिल परिचित उदाहरण की ओर मुड़ते हैं — गृहस्थ की ओर:

अपने हृदय को शरीर, पत्नी, सन्तान, घर, पशु, धन तथा सम्बन्धियों में गहराई से आसक्त करके, वह स्वयं को धन्य मानता है। (श्लोक 6) उन सबका भरण-पोषण करने की चिन्ता में सर्वत्र जलता हुआ, वह दुष्ट-बुद्धि मूर्ख निरन्तर पाप करता रहता है। (श्लोक 7) नहीं, अपने अन्तःपुर में कामुक स्त्रियों द्वारा किए गए आकर्षण से, तथा तोतली बोली बोलते शिशुओं की बातों से भी अपने मन और इन्द्रियों को मोहित करके, गृहस्थ अपने घरेलू जीवन में आसक्त रहता है, जो मुख्यतः कष्टों से भरा है और जिसके कर्तव्यों में छल-कपट का अभ्यास सम्मिलित है; और यदि, इन कर्तव्यों को सावधानीपूर्वक निभाते हुए, वह विपत्ति को टालने में सफल हो जाता है, तो वह स्वयं को मानो सुखी मानता है। (श्लोक 8-9)

यहाँ कपिल के मनोविज्ञान की सूक्ष्मता पर ध्यान देना उचित है। वे यह नहीं कहते कि गृहस्थ केवल मूर्ख या दुष्ट है; वे कहते हैं कि गृहस्थ की अपनी ही स्नेह-भावनाएँ — पत्नी के प्रति, शिशु की तोतली बोली के प्रति, आपदा को एक बार फिर टाल देने की छोटी-सी विजय के प्रति — ही वह तन्त्र है जो उसे बाँधे रखता है। प्रेम स्वयं, जब पूर्णतः नाशवान् वस्तुओं की ओर मोड़ दिया जाए और कभी उनके स्रोत की ओर नहीं, निरन्तर बन्धन का इंजन बन जाता है। अध्याय इसके बाद इस बन्धन के व्यावहारिक परिणामों का बिना किसी संकोच के अनुसरण करता है: “यहाँ-वहाँ से बड़ी हिंसा करके अर्जित धन” (श्लोक 10) से उस परिवार का भरण-पोषण करना जो उसकी क्षमता से भी अधिक समय तक

जीवित रहेगा; बार-बार पुनः आरम्भ किए जाने पर भी व्यवसाय के निरन्तर असफल होते रहने से वह “निर्धन” हो जाता है और “दयनीय दशा को प्राप्त” होता है (श्लोक 11-12); और अन्ततः, वह कटु मोड़ जहाँ “उसकी पत्नी तथा अन्य लोग उसके साथ पहले जैसा सम्मान नहीं करते, ठीक वैसे ही जैसे कंजूस कृषक अपने वृद्ध तथा जीर्ण बैलों के साथ वही व्यवहार नहीं करते” (श्लोक 13)।

आत्मजायासुतागारपशुद्रविणबन्धुषु ।

निरूढमूलहृदय आत्मानं बहु मन्यते ॥ ६ ॥

*ātma-jāyā-sutāgāra-paśu-draviṇa-bandhuṣu nirūḍha-mūla-hṛdaya ātmānam bahu manyate*

अर्थ: अपने ही शरीर, पत्नी, सन्तान, घर, पशुधन, धन तथा सम्बन्धियों में हृदय की जड़ें गहरी जमा लेने पर, गृहस्थ स्वयं को पूर्णतः भाग्यशाली समझने लगता है। (स्कन्ध 3, अध्याय 30, श्लोक 6)



अपने हृदय को शरीर, सन्तान, घर, पशु, धन तथा सम्बन्धियों में गहराई से आसक्त करके, गृहस्थ स्वयं को धन्य मानता है — यद्यपि यही आसक्ति उसे चिन्ता से जलाती है और उसे और गहरे पाप में ले जाती है (श्लोक 6-9)।

## वृद्धावस्था, उपेक्षा, तथा मृत्यु की निकटता

अध्याय का अगला भाग सम्पूर्ण कपिल-गीता में सबसे कोमल तथा सबसे गम्भीर भागों में से एक है, क्योंकि यह किसी दुष्टता का नहीं अपितु सरल, सार्वभौमिक मानवीय पतन का वर्णन करता है। घटते सम्मान के साथ व्यवहार किए जाने पर भी, कपिल कहते हैं, वृद्ध व्यक्ति उस परिवार के प्रति “विरक्ति अनुभव नहीं करता” जिसकी सेवा में उसने अपना सम्पूर्ण जीवन बिताया:

जिन्हें उसने स्वयं (कभी) पाला-पोसा था, उन्हीं के द्वारा भरण-पोषण किया जाकर तथा वृद्धावस्था के कारण विकृत होकर, वह अपच जैसे रोगों का शिकार हो जाता है; उसका आहार तथा गतिविधि दोनों घट जाते हैं और वह अपने घर तक सीमित होकर, अपनी मृत्यु की प्रतीक्षा करते हुए, अपने पुत्रों तथा पत्नी द्वारा तिरस्कारपूर्वक फेंके गए भोजन पर एक कुत्ते के समान जीवन बिताता है। (श्लोक 14-15)

इस श्लोक में कोई निन्दा नहीं है, केवल एक सरल, लगभग वृत्तान्त-सदृश विवरण कि आध्यात्मिक तैयारी के बिना वृद्धावस्था कैसी दिख सकती है — जीवन भर की गृहस्थी के प्रति समर्पण का अन्त में उसी उदासीन तिरस्कार से प्रतिफल, जो कोई एक वृद्ध कुत्ते के साथ दिखा सकता है। कपिल दोष देने में नहीं ठहरते; वे सीधे शरीर के अपने अन्तिम लक्षणों की ओर बढ़ते हैं, उसी निर्मम स्पष्टता के साथ वर्णित: “प्राण-वायु के बाहर निकलने के प्रयास से उसकी आँखें बाहर को निकल आती हैं; उसकी श्वास-नली कफ से अवरुद्ध हो जाती है, खाँसी तथा साँस लेने में उसे परिश्रम करना पड़ता है, तथा उसके कण्ठ से मृत्यु-घर्घर सुनाई देती है” (श्लोक 16)। “(अपनी शय्या पर) पड़ा हुआ, अपने शोकाकुल सम्बन्धियों से घिरा हुआ, तथा मृत्यु के फन्दे में फँसा हुआ, वह सम्बोधित किए जाने पर भी एक शब्द नहीं बोल पाता” (श्लोक 17)। वह व्यक्ति “अपने रोते हुए कुटुम्बियों के मध्य, अत्यधिक पीड़ा से मूर्च्छित या विक्षिप्त होकर, प्राण त्याग देता है” (श्लोक 18) — उसका मन अन्तिम क्षण तक उसी परिवार में लगा रहता है जिसकी वह वास्तव में कभी रक्षा नहीं कर सका।

## यमराज का मार्ग: एक चेतावनी, तमाशा नहीं

आगे जो वर्णन है — यमराज, मृत्यु तथा ब्रह्माण्डीय न्याय के देवता, के धाम की ओर आत्मा की यात्रा का, तथा वहाँ प्रतीक्षारत यातनाओं का — सम्पूर्ण भागवत में सबसे सजीव तथा सबसे कठिन अंशों में से एक है। इसे यहाँ ठीक वैसे ही प्रस्तुत किया गया है जैसे गीता प्रेस का पाठ इसे प्रस्तुत करता है, उसी संयम के साथ जो यह श्रृंखला कठिन सामग्री के प्रति सदैव बनाए रखती है: एक वास्तविक आध्यात्मिक संकट के विरुद्ध शास्त्र की अपनी गम्भीर चेतावनी के रूप में, न कि अपने-आप में रमने योग्य किसी तमाशे के रूप में।

उस क्षण मृत्यु के दो भयावह दूतों को क्रोध से भरी आँखों के साथ आया देखकर, हृदय में काँपता हुआ, वह मल-मूत्र त्याग देता है। (श्लोक 19) उसकी आत्मा को नरक की यातनाएँ सहने योग्य एक विशेष (सूक्ष्म) शरीर पहनाकर तथा उसे गले में रस्सियों से बाँधकर, वे उसे उसी प्रकार बलपूर्वक लम्बे मार्ग पर (यमराज के धाम की ओर) घसीटते हैं जैसे राजा के सिपाही किसी अपराधी को (कारागार की ओर) घसीटते हैं। (श्लोक 20)

इस श्लोक की एक टिप्पणी में गीता प्रेस संस्करण उस विवरण की व्याख्या करता है जो इस विषय पर पुराण-साहित्य में बार-बार आता है: “हमारे शास्त्रों में उल्लेख है कि नरक के दण्ड को प्राप्त पापियों को एक सूक्ष्म शरीर प्रदान किया जाता है, जो विभिन्न रूपों में यातना सहते हुए भी आश्चर्यजनक रूप से दृढ़ रहता है और तब तक नष्ट नहीं होता जब तक पापी अपनी सज़ा पूर्णतः न भुगत ले।” यह बिन्दु निरर्थक क्रूरता का नहीं अपितु पूर्णता का है — परिणाम को अपना पूर्ण क्रम इसलिए चलाना ही होता है क्योंकि वह *न्यायसंगत* है, ठीक उन कर्मों के अनुरूप जिन्होंने उसे उत्पन्न किया। कपिल उस मार्ग का वर्णन “निन्यानबे हज़ार योजन (7,92,000 मील) लम्बा” बताते हुए करते हैं, जिसे “दो से तीन घण्टों के भीतर” तय किया जाता है (श्लोक 24) — एक ऐसा मार्ग जिसमें “कोई आश्रय या जल नहीं है” और जो “जलती हुई रेत से आच्छादित है” (श्लोक 22), जिस पर आत्मा को “मार्ग में कुत्तों द्वारा काटा जाता है” (श्लोक 21) तथा भूख, प्यास, “वन-अग्नि तथा गर्म वायु” तथा “पीठ पर कोड़ों से पिटाई” द्वारा आगे बढ़ने को बाध्य किया जाता है (श्लोक 22), “बार-बार गिरते हुए तथा थकान से मूर्च्छित होते हुए पुनः उठते हुए” (श्लोक 23)।



आगे की यातनाओं के लिए उपयुक्त एक विशेष शरीर धारण किए हुए, आत्मा को यमराज के धाम की ओर एक लम्बे तथा भयावह मार्ग पर घसीटा जाता है, ठीक वैसे ही जैसे राजा के सिपाही किसी अपराधी को न्याय-स्थल की ओर घसीटते हैं (श्लोक 20)।

नरक की यातनाओं को उसी निर्मम, शास्त्र-सुलभ प्रत्यक्षता के साथ सूचीबद्ध किया गया है — अंगों को “अग्नि में जलाया” जाना, आत्मा को “अपना ही मांस खाने” पर विवश किया जाना, “नरक के कुत्तों तथा गिद्धों द्वारा आँतें बाहर निकाली” जाना, “सर्प, बिच्छू, मच्छर” आदि द्वारा यातना, “हाथियों द्वारा एक-एक करके अंगों को काट कर अलग किया” जाना, “पहाड़ की चोटियों से नीचे फेंका” जाना अथवा “जल में या किसी गुफा में रोका” जाना (श्लोक 25–27), तथा “तमिस्र, अन्धतमिस्र, रौरव आदि” नामक नरकों में भोगना (श्लोक 28)। यह श्रृंखला इन विवरणों को मूल स्रोत में कही गई सीमा से अधिक अलंकृत करके प्रस्तुत नहीं करेगी, तथा इन्हें यहाँ — जैसा कि भागवत स्वयं इनका आशय रखता है — आध्यात्मिक गम्भीरता की एक गहन पुकार के रूप में प्रस्तुत करती है, न कि अपने-आप में रमने योग्य किसी वस्तु के रूप में। यह उल्लेखनीय है कि कपिल का अगला ही श्लोक इस सूची से पीछे हटकर अपनी माता को एक चौंकाने वाला नया दृष्टिकोण देता है:

कुछ लोग कहते हैं, हे माता, कि स्वर्ग और नरक इसी संसार में विद्यमान हैं; क्योंकि नरक में अनुभव की जाने वाली यातनाएँ यहाँ भी देखी जाती हैं। (श्लोक 29)

यह एक श्लोक अब तक कही गई सम्पूर्ण बात को नया अर्थ देता है। नरक का विस्तृत ब्रह्माण्ड-वर्णन, कपिल के अनुसार, उस संसार से पूर्णतः पृथक् नहीं है जिसमें हम पहले से ही रहते हैं — अनियन्त्रित भौतिक आसक्ति से भरे जीवन के साथ आने वाला भय, शारीरिक कष्ट, एकाकीपन, तथा सम्मान की हानि — ये स्वयं एक प्रकार का नरक हैं, जो ध्यान देने वाले किसी भी व्यक्ति को यहीं, अभी, मृत्यु की प्रतीक्षा किए बिना दिखाई दे सकता है। सम्बोधन “हे माता” यह भी स्मरण कराता है कि यह सम्पूर्ण विवरण आरम्भ से अन्त तक प्रेम तथा चिन्ता में कहा गया है, वैराग्य में नहीं।

अत्रैव नरकः स्वर्ग इति मातः प्रचक्षते ।

या यातना वै नारक्यस्ता इहाप्युपलक्षिताः ॥ २९ ॥

*atraiva narakaḥ svarga iti mātāḥ pracakṣate yā yātanā vai nārakyas tā ihāpy upalakṣitāḥ*

अर्थ: हे माता, कुछ विवेकी जन कहते हैं कि स्वर्ग और नरक दोनों इसी संसार में यहीं विद्यमान हैं, क्योंकि नरक कहलाने वाली यातनाएँ यहाँ भी स्पष्ट रूप से देखी जा सकती हैं। (स्कन्ध 3, अध्याय 30, श्लोक 29)



"कुछ लोग कहते हैं, हे माता, कि स्वर्ग और नरक इसी संसार में विद्यमान हैं; क्योंकि नरक में अनुभव की जाने वाली यातनाएँ यहाँ भी देखी जाती हैं" — कपिल का यह पुनर्दृष्टिकोण-श्लोक अध्याय की चेतावनियों को हमारे वर्तमान जीवन की ओर पुनः मोड़ देता है (श्लोक 29)।

## परीक्षा का प्रयोजन: शुद्धि, केवल दण्ड नहीं

अध्याय के समापन श्लोक स्पष्ट करते हैं कि यह सम्पूर्ण परीक्षा, चाहे कितनी भी भयावह क्यों न हो, कथा का अन्त नहीं अपितु उसके भीतर की एक अवस्था है — एक शुद्धि जो अन्ततः एक नए मानव-जन्म में परिणत होती है:

जो व्यक्ति उपर्युक्त रीति से (ऊपर श्लोक 7, 10 तथा 11 में वर्णित) अपने परिवार का भरण-पोषण करता है, अथवा केवल अपने शरीर का ही पोषण करता है, वह दोनों को (परिवार तथा शरीर दोनों को) यहीं छोड़कर, यहाँ से प्रस्थान करके, ऊपर वर्णित (श्लोक 20 से 28 में) अपने कर्मों का फल भोगता है। (श्लोक 30) अन्य प्राणियों के हितों को क्षति पहुँचाकर पोषित किए गए अपने शरीर को त्यागकर, वह अपने पापों की एक गठरी (सिर पर) लेकर अकेला नरक के अन्धकारमय क्षेत्र में जाता है। (श्लोक 31) मनुष्य नरक में, अपने परिवार का भरण-पोषण करने में किए गए (पापों के) दैवीय दुष्परिणाम भोगता है, तथा उस व्यक्ति के समान व्यथित होता है जिसने अपना धन खो दिया हो। (श्लोक 32) जो व्यक्ति पूर्णतः अधर्मपूर्ण मार्गों का सहारा लेकर अपने परिवार का भरण-पोषण करने के लिए उत्सुक रहता है, वह अन्धतमिस्र नामक नरक के सबसे अन्धकारमय क्षेत्र में जाता है। (श्लोक 33)

इस परिणाम-श्रृंखला में एक गहरा सैद्धान्तिक तत्त्व छिपा है, जिसे सीधे नाम देना उचित है। कपिल नरक को किसी निर्जीव, स्वतः सन्तुलित होने वाले हिसाब-किताब के रूप में प्रस्तुत नहीं करते: श्लोक 32 स्पष्ट रूप से कहता है कि ये कष्ट “दैवीय” रूप से अर्थात् प्रोविडेंस द्वारा दिए जाते हैं — वही “सर्वशक्तिमान् काल” जिसका परिचय पहले ही श्लोक 1 में भगवान् की अपनी अजेय शक्ति के रूप में कराया जा चुका है। इसके बाद जो कुछ घटता है, वह न तो अनियन्त्रित यान्त्रिक कर्म-फल है और न ही अकारण क्रूरता; यह एक सटीक, व्यक्तिगत व्यवस्था है, जो ठीक-ठीक

कर्म के अनुरूप नापी गई है तथा जीव की शुद्धि पूर्ण होने तक ही बनी रहती है (श्लोक 34)। कपिल मानो अपनी माता से यह कह रहे हैं कि जो भगवान् काल को संचालित करते हैं, वे ही नरक को भी संचालित करते हैं — ठीक वैसे ही जैसे एक वैद्य कड़वी औषधि का संचालन करता है, न कि जैसे कोई शत्रु दण्ड का संचालन करता है।

“पापों की एक गठरी” वाक्यांश अपने-आप में एक चौंकाने वाला बिम्ब है — यहाँ पाप को किसी अमूर्त नैतिक ऋण के रूप में नहीं अपितु एक साक्षात् बोझ के रूप में चित्रित किया गया है, जिसे आत्मा को अकेले, यात्रा के अगले चरण में, स्वयं ढोना पड़ता है; परिवार का कोई भी सदस्य, चाहे कितना भी प्रिय क्यों न हो, वहाँ उसके साथ नहीं जाता। तथापि अध्याय का अन्तिम श्लोक अन्ततः आशा की ओर मुड़ता है:

नरक की सभी यातनाओं तथा मानव-जन्म से पूर्व निम्नतम पशु-योनियों (जैसे कुत्ता, सूअर आदि) से क्रमशः गुज़रकर, तथा इस प्रकार अपने पापों से शुद्ध होकर, वह इस पृथ्वी पर मनुष्य के रूप में पुनर्जन्म लेता है। (श्लोक 34)

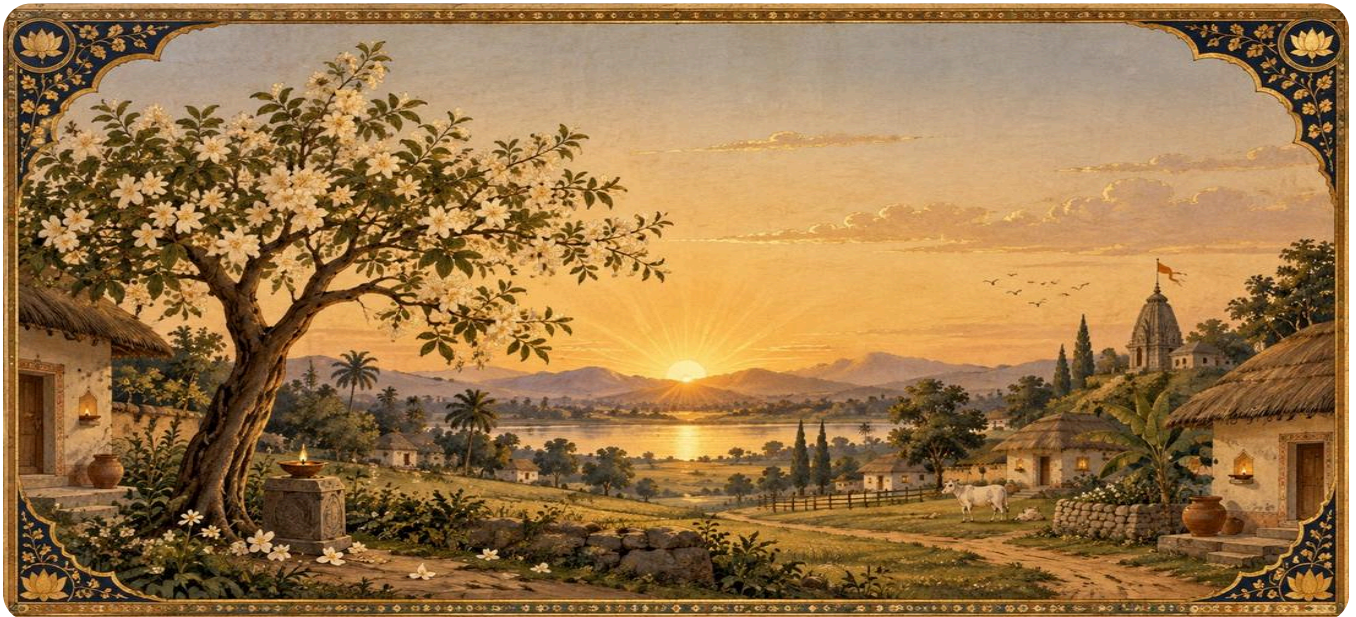
अधस्तान्नरलोकस्य यावतीर्यातनादयः ।

क्रमशः समनुक्रम्य पुनरत्राव्रजेच्छुचिः ॥ ३४ ॥

*adhastān nara-lokasya yāvatīr yātanādayaḥ kramaśaḥ samanukramya punar atrāvrajec chuciḥ*

अर्थ: मनुष्य-लोक से नीचे की समस्त यातनाओं को क्रमशः पार करके तथा इस प्रकार निर्मल होकर, आत्मा इस संसार में पुनः मनुष्य के रूप में जन्म लेने लौट आती है। (स्कन्ध 3, अध्याय 30, श्लोक 34)

यह अध्याय का मूल, तथा प्रायः चूक जाने वाला, अन्तिम सन्देश है: इस परीक्षा का अन्त होता है। यह अनन्त नरक-वास नहीं अपितु शुद्धि की एक क्रमिक प्रक्रिया है — पहले नरक में यातनाएँ, फिर निम्नतर पशु-योनियों से गुज़रना, तथा अन्ततः, पाप शुद्ध होने पर, एक नया मानव-जन्म, जिसके साथ वह सम्पूर्ण आध्यात्मिक अवसर आता है जो केवल मानव शरीर ही विशिष्ट रूप से प्रदान करता है।



नरक की सभी यातनाओं तथा निम्नतम पशु-योनियों से गुज़रकर, तथा इस प्रकार पाप से शुद्ध होकर, आत्मा इस पृथ्वी पर मनुष्य के रूप में पुनर्जन्म लेती है — इस अध्याय का अन्तिम आशा-वचन (श्लोक 34)।

अध्याय का पुष्पिका-वाक्य प्रवचन को इस प्रकार समाप्त करता है: “इस प्रकार ‘भगवान् कपिल की कथा’ का यह त्रिंश प्रवचन, जिसका शीर्षक है ‘उन कर्मों के फल का पीछा करना जो उन्हें करने वालों का अगले जन्मों में अनुसरण करते हैं’, महान् एवं गौरवशाली भागवत-पुराण के तृतीय स्कन्ध में समाप्त होता है, जिसे परमहंस-संहिता के नाम से भी जाना जाता है।”

## चिन्तन: एक माता की चेतावनी, तथा प्रत्येक गृहस्थ का चयन

अध्याय 30 को पढ़ना जान-बूझकर कठिन बनाया गया है, और यह उद्देश्यपूर्ण है। कपिल-गीता के इर्द-गिर्द के तत्त्व-ज्ञान से भरे अध्यायों के विपरीत, यह न तो जल में प्रतिबिम्ब का कोई सान्त्वनादायक बिम्ब देता है, न ही जागने से समाप्त होने वाली कोई कोमल स्वप्न-उपमा। यह केवल, शास्त्र की अपनी गम्भीर ईमानदारी के साथ, उस जीवन के तार्किक परिणाम का अनुसरण करता है जो पूर्णतः शरीर, घर तथा परिवार के इर्द-गिर्द संगठित है, मानो वे सम्पूर्ण यथार्थ हों न कि एक अस्थायी तथा नाशवान् धरोहर। तथापि यह अध्याय, अन्ततः, निराशा का उपदेश नहीं है। कपिल अपनी माता से यह नहीं कहते कि गृहस्थ-जीवन या शारीरिक भरण-पोषण अपने-आप में पाप है — इसी भागवत के पूर्व-अध्याय उन गृहस्थों का सम्मान करते हैं जो अपने कर्तव्यों को भक्ति तथा वैराग्य की भावना में निभाते हैं। यह अध्याय जिस पाप को सटीक रूप से परिभाषित करता है, वह है *आसक्ति* को स्थायित्व समझ लेना: यह भूल जाना कि पत्नी, सन्तान, घर, तथा स्वयं शरीर — ये सभी, बिना किसी अपवाद के, काल के अधीन हैं, तथा अपनी सम्पूर्ण धन्यता की भावना को उन वस्तुओं पर टिकाना जो कभी स्थायी रहने के लिए बनी ही नहीं थीं। इस दृष्टि से देखें तो, श्लोक 29 — “स्वर्ग और नरक इसी संसार में विद्यमान हैं” — अध्याय का वास्तविक केन्द्र-बिन्दु बन जाता है: यह चयन किसी दूर की एक नियति और दूसरी के बीच नहीं है, अपितु अभी जीने के दो तरीकों के बीच है — एक जो चिपकता तथा शोक करता है, तथा दूसरा जो खुले हाथों से अपने कर्तव्यों का निर्वाह करता है। इस अध्याय द्वारा वर्णित शुद्धि, चाहे उसके विवरण कितने भी भयावह क्यों न हों, प्रत्येक बार उसी स्थान पर समाप्त होती है — एक नया मानव-जन्म, तथा उसके साथ, भिन्न रूप से चुनने का एक नया अवसर।

## सन्दर्भ

- मूल स्रोत: श्रीमद्भागवत महापुराण (भागवत पुराण), गीता प्रेस, गोरखपुर — अंग्रेज़ी सम्पूर्ण संस्करण, तृतीय स्कन्ध, त्रिंश प्रवचन, “शरीर, घर आदि में आसक्त मनुष्यों का पतन”
- श्रृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज़डम — श्रीमद्भागवत महापुराण के माध्यम से अध्याय-दर-अध्याय एक भक्तिपूर्ण यात्रा
- आध्यात्मिक मार्गदर्शन में प्रस्तुत: पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: [kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-3-chapter-30-downfall-of-men-attached-hi.html](http://kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-3-chapter-30-downfall-of-men-attached-hi.html)

श्रीमद्भागवतम् विज्ञानम् • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

